Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LI (51), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

स्वामी दयानन्द सरस्वती : वैदिक पुनर्जागरण के अग्रदूत

डॉ. सुमित मेहता*

* सहायक आचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय, सीकर (राज.) भारत

प्रस्तावना – स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824–1883) आधुनिक भारत के उन महान विचारकों में से एक थे जिन्होंने भारतीय समाज को वैदिक मूल्यों की ओर लौटने का आह्वान किया। उन्होंने धार्मिक सुधारों की नींव रखी, सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया, शिक्षा को जन–जन तक पहुँचाने का प्रयास किया और राष्ट्र निर्माण की दिशा में वैचारिक क्रांति की शुरुआत की। उनका जीवन एक तपस्वी, विचारक और समाज–सुधारक के रूप में भारतीय इतिहास में अमिट छाप छोड गया। युगद्दष्टा और पथ प्रदर्शक कहे जाने वाले दयानन्द सरस्वती ने पाखण्ड और अन्धविश्वासों के खिलाफ अभियान शुरू किया। स्वामी जी ने हिन्दी भाषा के माध्यम से अध्यात्म, मानवता, भारतीयता, हिन्तुत्व और राष्ट्रभक्ति के प्रति जन–जन को जागृत किया। तत्कालीन समय में जब समाज छुआछूत, विधवा–अत्याचार, बाल–विवाह, अशिक्षा आदि कुरीतियों से ग्रसित था, उस समय स्वामी जी ने समाज के सर्वांगींण विकास हेतु कुरीतियों पर करारा प्रहार किया।

प्रारंभिक जीवन और वैचारिक परिवर्तन – स्वामी दयानन्द का जन्म 12 फरवरी 1824 को गुजरात के टंकारा गाँव में हुआ था। उनका बचपन का नाम मूलशंकर था। उनके पिता करशनजी त्रिवेदी एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण थे और शिवभक्त थे। वे राज कर्मचारी थे जिन्हें जमेदार कहा जाता था।[1]

मूलशंकर का पालन–पोषण धार्मिक वातावरण में हुआ, लेकिन एक घटना ने उनके जीवन की दिशा बदल दी। महाशिवरात्रि के दिन उन्होंने देखा कि चूहे शिवलिंग पर चढकर खेल रहे हैं, और पुजारी उन्हें ईश्वर मानकर पूज रहे हैं। इस दृश्य ने उनके मन में गहरे प्रश्न उत्पन्न किए कि क्या यह ईश्वर है जो स्वयं को चूहों से नहीं बचा सकता? स्वामी जी ने अपने पिता को जगाकर पूछा कि क्या ये महादेव छोटे से चूहों को नहीं हटा सकते? तब पिताजी ने कहा कि यह तो केवल देवता की मूर्ति है। इस घटना ने उन्हें मूर्तिपूजा पर पुनर्विचार करने को प्रेरित किया। मूलशंकर ने सच्चे शिव की खोज में घर छोड़ने का निश्चय कर लिया।

सत्य की खोज और गृहत्याग – मूलशंकर ने 1846 में घर त्याग दिया और सत्य की खोज में निकल पडे। उन्होंने अनेक स्थानों की यात्रा की और विभिन्न धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया। उन्होंने योग, वेद, उपनिषद, दर्शन और व्याकरण का गहन अध्ययन किया। उनका उद्देश्य था सत्य की खोज, अंधविश्वासों का खंडन और समाज को वैदिक मार्ग पर लाना।

उन्होंने धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन शुरू किया और सत्य की खोज में निकल पडे। यह यात्रा उन्हें मथुरा तक ले गई, जहाँ उनकी भेंट स्वामी विरजानन्द से हुई। विरजानन्द की आर्य ग्रन्थों पर बहुत अधिक श्रद्धा थी। स्वामी जी का जब विरजानन्द से परिचय हुआ तो स्वामी जी से पूछा गया कि क्या तीन वर्ण में व्याकरण आती है, इस बात से प्रेरित होकर स्वामी जी ने विरजानन्द जी से पढ़ने का निश्चय कर लिया।[2] स्वामी विरजानन्द के सान्निध्य में उन्होंने वैदिक ज्ञान को आत्मसात किया और संकल्प लिया कि वे भारत को अज्ञानता से मुक्त करेंगे। उन्होंने अपने गुरु को गुरुदक्षिणा के रूप में यह वचन दिया कि वे वेदों का प्रचार करेंगे और समाज को सच्चे धर्म की ओर ले जाएंगे। विरजानन्द ने उन्हें वेद, व्याकरण और दर्शन की शिक्षा दी और जीवन का उद्देश्य बताया कि 'विद्या को सफल करो, परोपकार करो'। यही आदेश स्वामी दयानन्द के जीवन का ध्येय बन गया।

वैदिक धर्म का प्रचार – स्वामी दयानन्द ने भारत के विभिन्न भागों में भ्रमण कर वैदिक धर्म का प्रचार किया। उन्होंने मूर्तिपूजा, जातिवाद, अंधविश्वास और धार्मिक पाखंडों का विरोध किया। उनका प्रसिद्ध नारा वेदों की ओर लौटो। उन्होंने वेदों को ज्ञान का सर्वोच्च स्रोत माना और कहा कि ईश्वर, आत्मा, कर्म और पुनर्जन्म जैसे सिद्धांतों को समझने के लिए वेदों का अध्ययन आवश्यक है।

उनकी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने विभिन्न धर्मों और मतों की आलोचना की, लेकिन उद्देश्य था सत्य की खोज और समाज को अज्ञान से मुक्त करना। उन्होंने कहा कि मनुष्यकृत ग्रंथों में ईश्वर और ऋषियों की निंदा है, जबकि ऋषिकृत ग्रंथों में नहीं।

आर्य समाज की स्थापना – युग पवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों को समूल नष्ट करने तथा वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार करने के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। सत्य की स्थापना करना उनके जीवन का मूल उद्देश्य था। उन्होनें आर्य समाज की स्थापना करके विश्व को एक नया प्रकाश दिया। उन्होनें स्वयं का कोई पंथ अथवा सम्प्रदाय नहीं चलाया अपितु ऋषि मुनियों के बताये गये मार्ग को ही प्रशस्त किया।[3] 29 जनवरी 1874, शुक्रवार, माघ कृष्ण अष्टमी को स्वामी जी दूसरी बार बम्बई गये। इस यात्रा के दौरान स्वामी जी ने 10 अप्रैल 1875 को मुंबई में आर्य समाज की स्थापना की[4]। इसका उद्देश्य था वैदिक धर्म का प्रचार, सामाजिक सुधार, शिक्षा का प्रसार और राष्ट्र निर्माण। आर्य समाज के 28 नियमों में सत्य, परोपकार, शिक्षा, स्त्री–पुरुष समानता और जातिवाद का विरोध प्रमुख थे। आर्य समाज ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति ला दी। उन्होंने गुरुकुलों की स्थापना की जहाँ सभी जातियों के छात्र एक साथ शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। यह उस समय की सामाजिक व्यवस्था के लिए एक चुनौती थी। आर्य समाज ने स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार दिलाने के लिए

संघर्ष किया और उन्हें समाज का समान अंग माना।

धार्मिक विचार और दर्शन – स्वामी दयानन्द ने ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान बताया। उन्होंने कहा कि ईश्वर की पूजा मूर्तियों के माध्यम से नहीं की जा सकती। उनका मानना था कि धर्म का उद्देश्य आत्मा की उन्नति और समाज का कल्याण होना चाहिए। उन्होंने कर्म सिद्धांत को जीवन का आधार माना और पुनर्जन्म को आत्मा की यात्रा का हिस्सा बताया। उनका दर्शन अत्यंत वैज्ञानिक था। उन्होंने कहा कि धर्म को तर्क और अनुभव के आधार पर समझना चाहिए, न कि अंधश्रद्धा के आधार पर। उन्होंने वेदों को विज्ञान, गणित, खगोलशास्त्र और चिकित्सा का स्रोत बताया। उनका मानना था कि वेदों में न केवल आध्यात्मिक ज्ञान है, बल्कि भौतिक विज्ञान की भी गहराई है।

सामाजिक सुधार – शिक्षा प्राप्त कर जब स्वामी जी समाज सुधार के कार्य में संलग्न हुए उस समय समाज कुरूतियों और अन्धविश्वासों से घिरा हुआ था तथा समाज में हर तरफ घोर अव्यवस्था विद्यमान थी। उस समय समाज में छुआछूत, जाति–पाति, अन्धविश्वास और पाखण्डों का बोलबाला था। प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र माना जाता था। छोटी जातियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। यहाँ तक की उन्हें अपने पानी का कुआं भी अलग बनवाना पड़ता था। दक्षिण भारत मे तो ब्राह्मण समाज कई जातियों की छाया तक से दूर रहता था।[5] स्वामी दयानन्द ने समाज में व्याप्त इन कुरीतियों का घोर विरोध किया। फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा 1923 को स्वामी जी हरिद्वार पंहुचें। उनके यहां आने का प्रमुख उद्देश्य यहां एकत्रित जनसमूह को अन्धविश्वास से दूर रहने का उपदेश देना था। स्वामी जी ने वहां उपस्थित लाखों के जनसमुदाय के सामने मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तिलक आदि अन्धविश्वासों का घोर विरोध किया।[6] उन्होंने बाल विवाह, सती प्रथा, जातिवाद, पशु बलि और स्त्रियों को वेदाध्ययन से वंचित रखने जैसी प्रथाओं को अमानवीय बताया। जो स्त्रियां विधवा हो जाती थी उन्हें आजीवन एकाकी रह कर दयनीय जीवन जीना पड़ता था। इसके अलावा बाल विवाह और बहु विवाह प्रथा के कारण भी स्त्रियों की दुगर्ति होती थी। रूढिवादिता की शिकार इन स्त्रियों को वेश्या तक बनना पड़ता था तथा कई स्त्रियां तो अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर लेती थी।[7] स्वामी जी ने स्त्रियों के साथ हो रहे इस अन्याय का विरोध करते हुए उन्हें शिक्षा का अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष किया और उन्हें वैदिक धर्म का अंग माना। उनका मानना था कि 'समाज की उन्नति तभी संभव है जब सभी वर्गों को समान अधिकार मिले। उन्होंने कहा कि स्त्री और पुरुष दोनों समान हैं, दोनों को वेद पढ़ने का अधिकार है'। उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया और कहा कि स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार मिलना चाहिए।

शिक्षा और राष्ट्र निर्माण – स्वामी दयानन्द ने शिक्षा को समाज की रीढ माना। उन्होंने कहा कि जब तक समाज शिक्षित नहीं होगा, तब तक वह स्वतंत्र नहीं हो सकता। उन्होंने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित किया और आधुनिक शिक्षा के साथ वैदिक शिक्षा को जोडने का प्रयास किया। उन्होंने संस्कृत, वेद, गणित, विज्ञान और व्याकरण को शिक्षा का अंग बनाया। उनका मानना था कि राष्ट्र निर्माण के लिए सांस्कृतिक पुनर्जागरण आवश्यक है। उन्होंने भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता दी और अंग्रेजी शिक्षा को केवल उपयोगिता के लिए स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि भारत को अपनी संस्कृति, धर्म और भाषा को अपनाकर ही स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है।

राजनीतिक दृष्टिकोण – स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 1876 में 'स्वराज्य' का नारा दिया, जिसे बाद में लोकमान्य तिलक ने आगे बढाया। उन्होंने ब्रिटिश शासन का विरोध किया और भारतीय संस्कृति की पुनर्स्थापना को राष्ट्र निर्माण का आधार माना। उनका राजनीतिक दृष्टिकोण धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण से जुडा था। उन्होंने कहा कि जब तक भारतवासी अपने धर्म, संस्कृति और भाषा को नहीं अपनाएंगे, तब तक स्वतंत्रता संभव नहीं है। उनका मानना था कि विदेशी शासन केवल तभी सफल होता है जब देशवासी आत्मविस्मृति में जीते हैं।

साहित्यिक योगदान – स्वामी दयानन्द ने अनेक ग्रंथों की रचना की जिनमें सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कृत व्याकरण, और संहिता भाष्य प्रमुख हैं। सत्यार्थ प्रकाश उनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है जिसमें उन्होंने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर अपने विचार स्पष्ट किए हैं। यह ग्रंथ आज भी आर्य समाज का मूल ग्रंथ माना जाता है। उनकी भाषा सरल, तर्कपूर्ण और प्रभावशाली थी। उन्होंने संस्कृत और हिंदी दोनों में लेखन किया और वेदों की व्याख्या को जनसामान्य तक पहुँचाया।

मृत्यु और विरासत – उनकी मृत्यु विषाक्त भोजन के कारण हुई थी, जिसे षड्यंत्र माना जाता है। 26 सितम्बर 1883 को स्वामी जी को किसी ने विष, काँच और क्रोटोन पौधै का बीज युक्त दूध पिला दिया।[8] स्वामी दयानन्द सरस्वती की मृत्यु 30 अक्टूबर 1883 को अजमेर में हुई। उनकी विचारधारा और कार्य आज भी जीवित हैं। आर्य समाज आज भी भारत और विश्व के कई देशों में सक्रिय है। उनके विचारों ने न केवल धार्मिक सुधार किए, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को भी प्रेरणा दी। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने उन्हें 'आधुनिक भारत का निर्माता' कहा था।

निष्कर्ष – स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन एक प्रेरणा है — सत्य की खोज, सामाजिक सुधार और राष्ट्र निर्माण की दिशा में। उन्होंने भारतीय समाज को वैदिक मूल्यों की ओर लौटने का मार्ग दिखाया और अंधविश्वासों से मुक्त करने का प्रयास किया। उनका योगदान आज भी प्रासंगिक है, विशेषकर जब समाज पुन: अपनी जडों की ओर लौटने की आवश्यकता महसूस करता है। उनका जीवन हमें यह सिखाता है कि सत्य की खोज, तर्क का प्रयोग और समाज के प्रति उत्तारदायित्व ही किसी राष्ट्र को महान बनाते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती केवल एक धार्मिक सुधारक नहीं थे, वे एक युग निर्माता थे। उन्होंने भारत को वैचारिक स्वतंत्रता दी, जो राजनीतिक स्वतंत्रता की नींव बनी। आज जब हम आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन खोज रहे हैं, स्वामी दयानन्द के विचार हमें मार्गदर्शन देते हैं। उनका 'वेदों की ओर लौटो' का आह्वान केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और बौद्धिक पुनर्जागरण का प्रतीक है। उन्होंने भारतीय समाज को आत्मगौरव, आत्मनिर्भरता और आत्मचिंतन की दिशा में अग्रसर किया।

समकालीन प्रासंगिकता – स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उनके समय में थे। आज जब समाज फिर से जातिवाद, धार्मिक कट्टरता और सामाजिक असमानता जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, उनके विचार हमें समाधान की दिशा दिखाते हैं।

1. **शिक्षा –** उन्होंने शिक्षा को सार्वभौमिक अधिकार माना। आज भी शिक्षा में समानता और गुणवत्ता की आवश्यकता है।
2. **स्त्री सशक्तिकरण –** उन्होंने स्त्रियों को वेदाध्ययन और सामाजिक भागीदारी का अधिकार दिया। आज के महिला अधिकार आंदोलन में उनके विचार प्रेरणा हैं।

3. धार्मिक सहिष्णुता – उन्होंने तर्क और वेदों के आधार पर धर्म की व्याख्या की। आज जब धार्मिक संवाद की आवश्यकता है, उनका दृष्टिकोण मार्गदर्शक हो सकता है।

4. राष्ट्रवाद – उनका स्वराज्य का विचार आज भी भारत की आत्मनिर्भरता की नींव है।

प्रभाव और विरासत – स्वामी दयानन्द सरस्वती की विरासत केवल आर्य समाज तक सीमित नहीं है। उनके विचारों ने अनेक स्वतंत्रता सेनानियों, समाज सुधारकों और शिक्षाविदों को प्रभावित किया। महर्षि अर्विंद, लाला लाजपत राय, पंडित गुरुदत्ता विद्यार्थी और पंडित मदन मोहन मालवीय जैसे व्यक्तित्वों ने उनके विचारों को आगे बढाया। आर्य समाज के माध्यम से उन्होंने लाखों लोगों को वैदिक धर्म, शिक्षा और सामाजिक चेतना से जोडा। आज भी आर्य समाज विद्यालय, गुरुकुल, पुस्तकालय और सामाजिक सेवा के क्षेत्र में सक्रिय है।

आलोचना और विवाद – स्वामी दयानन्द का जीवन जितना प्रेरणादायक था, उतना ही विवादों से भी घिरा रहा। उनकी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में उन्होंने अन्य धर्मों की आलोचना की, जिससे कई समुदायों में असंतोष उत्पन्न हुआ। विशेष रूप से इस्लाम, ईसाई धर्म और सिख धर्म पर उनकी टिप्पणियाँ विवादास्पद रही हैं। हालाँकि, उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण का उद्देश्य धार्मिक संवाद को तर्क और सत्य की कसौटी पर परखना था, न कि किसी धर्म का अपमान करना। उन्होंने कहा था कि 'सत्य को स्वीकार करना और असत्य को त्यागना ही धर्म है'।

निष्कर्षात्मक पुनरावलोकन – स्वामी दयानन्द सरस्वती का योगदान बहुआयामी था। उन्होंने भारत को वैदिक चेतना से जोडकर एक नई दिशा दी। उनका जीवन का एक ही मिशन था अज्ञानता के विरुद्ध युद्ध, सत्य की स्थापना और समाज का पुनर्निर्माण। उनकी शिक्षाएँ आज भी हमें यह सिखाती हैं कि यदि हम अपने मूल्यों, संस्कृति और ज्ञान पर गर्व करें, तो हम किसी भी चुनौती का सामना कर सकते हैं। वेदों की ओर लौटना केवल अतीत में झाँकना नहीं है, बल्कि भविष्य की दिशा तय करना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती, भवानी लाल भारतीय, अजमेर (1983), पृ. 8
2. स्वामी दयानन्द का स्वकथित जीवन चरित्र, पृ. 45
3. महर्षि दयानन्द, चिंतन के विविध आयाम, सावित्री लठवाल, पृ. 38
4. महर्षि दयानन्द, चिंतन के विविध आयाम, सावित्री लठवाल, पृ. 38
5. हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन, पृ. 5
6. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, पृ. 71
7. आर्य समाज का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 157
8. महर्षि दयानन्द की देन, कलकत्ता (1975), पृ. 35

****